सन्दर्भ

डा. प्रमोद कुमार

अजीत – 27.11.01

हिंसा से समाप्त नहीं होगी हिंसा

आतंकवाद सर्वव्यापक बन चुका है। प्रत्येक व्यक्ति को यह चुनाव करने के लिए विवश होना पड़ रहा है कि वह अमरीकी सैन्य कार्यवाई के समर्थन में है या ओसामा बिन लादेन और तालिबान के। पहले भी खाड़ी जंग के समय ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई थी, जब प्रश्न यह था कि आप सद्दाम हुसैन के साथ हैं या उसके विरुद्ध। केवल यही ही नहीं, इसी प्रकार हमें कोसावो में अमरीकी बमबारी तथा किसी जाती विशेष पर अत्याचार में से किसी एक का चुनाव करने के लिए विवश होना पड़ा था। वहां अमरीका तथा नाटो संगठन द्वारा की गई बम वर्षा से जितने व्यक्ति मरे, उनकी संख्या सर्ब कट्टरवादियों द्वारा मारे गये लोगों से तीन गुणा अधिक थी। इसी प्रकार बमबारी से शरणार्थी बने लोगों की संख्याा ३३ गुणा अधिक थी। हमें यह कहा गया कि यदि हम अमरीकी बमबारी का समर्थन नहीं करते, तो उपरोक्त नरसंहारों तथा सद्दाम हुसैन के अत्याचारों के लिए हम ही ज़िम्मेदार होंगे और अब फिर हमें यही बताया गया कि यदि हमने गरीबी के मारे अफगानियों पर अमरीकी हमले का समर्थन नहीं किया, तो ११ सितम्बर को न्यूयार्क में हुई हत्याओं की ज़िम्मेदारी के हम भी भागीदार समझे जाएंगे।

यह एक प्रत्यक्ष भ्रमज़ाल है, जिसमें फंसने से परहेज़ करना चाहिए। सबसे अधिक खतरनाक बात यह है कि अमरीकी सैन्य कार्रवाई और आतंकवादियों के हमले दोनों ही हिंसा को राजनीतिक कार्रवाई और अहिंसक सार्वजनिक लामबंदी का विकल्प समझते हैं। ये दोनों बातें ही गलत हैं। इसके पीछे यह तर्क कार्य कर रहा है कि विश्व भर में हिंसा प्रधान व्यवहार बने। जिसके पास अधिक मारक शक्ति होगी, वही विश्व पर राज करेगा। ११ सितम्बर को हुए आतंकवादी हमलों ने अमरीका को इस उद्देश्य के लिए उक्सा दिया है कि वह अपना पहला दावा पुनः जता पाए कि उसके पास हिंसा का खजाना अन्यों से कहीं अधिक है। प्रतिक्रम है कि आतंकवादियों, उनके समर्थकों पर हिंसक वार किया जाए। इसके साथ ही वे निर्दोष नागरिक भी शिकार हुए जिनकी किसी भी गुट से हमदर्दी नहीं थी। इस सारे घटनाक्रम का परिणाम आतंकवाद को शक्तिशाली बनाने के रूप में ही निकला। आतंकवाद के ज़िम्मेदार लोग यही तो चाहते थे कि यह सिद्ध हो कि अंततः हिंसा ही प्रत्येक मसले का समाधान है। शांति लाने के लिए मुकाबले के डर को एक ढंग के रूप में प्रयोग करने से हिंसक संस्कृति उत्पन्न होती है। दृष्टिकोण की यह धुरी हिंसा के लिए ज़िम्मेदार लोगों को व्यक्तिगत रूप में निशाना बनाना है। दूसरे शब्दों में पुलिस वालों ने आतंकवादी मार दिए और दूसरी ओर न्याय पालिका ने सज़ा के लिये कुछ पुलिस अधिकारी चुन लिए। यह एक ऐसा सिलसिला है जिसकी कहीं समाप्ति नहीं। इसके पीछे यह उद्देश्य कार्य करता है कि आतंकवादियों की हत्या करके और कुछ चुनिंदा पुलिस वालों को सज़ा देकर आतंकवाद समाप्त हो जाएगा।

परन्तु आतंकवाद केवल एक मनःस्थिति नहीं। अपितु यह एक राजनीतिक रणनीति है। आतंकवाद का अर्थकेवल किसी हाथ में बंदूक होना नहीं है। यदि इन बंदूकों और हथियारों को स्थायी रूप में खामोश करना है, तो आतंकवाद की राजनीति और विचारधारों से लड़ना होगा। जब तक आतंकवाद उत्पन्न होने वाला सिद्धांत या कारण बरकरार रहेगा, तब तक आतंकवाद कभी भी सिर उठा सकता है। आतंकवादी वही लोग हैं, जो ऐसी विचारधारा की ओर खिंच जाते हैं, जब तक ऐसी विचारधारा पनपती रहेगी, तब तक आतंकवाद ऐसे लोगों को अपनी ओर खींचता रहेगा।

यह छलावा हिंसा तथा आतंकवादी संस्कृति के वास्तविक कारण और इसके साथ निपटने के लिए उचित रणनीति को धुंधला कर देता है। भारत की वर्तमान सरकार को इसके लिये दोषी नहीं कहा जा सकता कि यह आतंकवाद को समाप्त करने के लिए उसने अमरीका पर आश्रय रखा। वास्तव में, भारत सरकार का यह प्रतिक्रम भारतीय स्टेट द्वारा अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण किये जाने के किए गए चुनाव का स्वाभाविक परिणाम ही था। भारत और पाकिस्तान जैसे देश अपनी आर्थिक प्रभुसत्ता के आत्मसमर्पण के

टैंक पर सवार तालिबान सैनिकों को देखते हुए कुछ बच्चे

बाद अब बड़े देशों के आगे राजनीतिक प्रभुसत्ता का आत्मसमर्पण कर रहे हैं। शायद यह पूंजीवाद के वैश्वीकरण का ही एक तर्कपूर्ण परिणाम है। अब यह आदेश मिल रहे हैं कि राष्ट्रीय हितों के लिए राजनीतिक प्रभुसत्ता का समर्पण आवश्यक है।

इन दोनों देशों ने विश्व की महाशक्ति द्वारा बनाए गए गठबंधन और इसके आदेशें को मानने से बचने के स्थान पर अपने राजनीतिक स्वायत्तता का आत्मसमर्पण कर दिया है। दोनों देश ही एक–दूसरे के साथ अपनी छोटी–छोटी दुश्मनी निकालने के लिए इस शक्तिशाली गठबंधन पर आश्रय रख रहे हैं। इन दोनों देशों के राजनीतिक शासकों ने एक बार पुनः राष्ट्रीय हितों, खतरे और सुरक्षा को अपने अनुसार नये अर्थ दिये है। उनके लिए राष्ट्रीय हित केवल सीमाओं की रक्षा है, न कि लोगों की राजनीतिक अथवा आर्थिक प्रभुसत्ता को बचाना। धमकी या खतरे का भाव केवल कमज़ोर पाकिस्तान, तालिबार या जैश–ए–मोहब्बत से है, न कि महाशक्तियों से जोकि विकासशील देशों की राजनीतिक एवं आर्थिकता को अस्थिर कर रही हैं। फिर सुरक्षा केवल सेना की तैनाती को समझाा जाता है, न कि लोकतंत्र को मज़बूत करने को। यहां तक कि देश में अमन–शान्ति कायम रखना भी विश्वव्यापी निर्णयों तथा आदेशों के घेरे में आ गया है। यह सभी कुछ घटित होने पर लोगों का कोई प्रतिक्रिम नहीं हुआ। इस छलावे ने तकनीक पर बहुत अधिक निर्भर रहने वाली मानसिकता में वृद्धि की है। उदाहरण के लिए अधिक कारगर आधुनिक तकनीक वाले हथियारों के प्रदर्शन का गुणगान किया जा रहा है। तकनीक से केवल अधिक सुरक्षित हाने का भ्रम ही उत्पन्न नहीं होता, अपितु दुश्मन वास्तविक रूप में भी बलशाली तथा भयानक लगने लगता है। अमरीका द्वारा अमरीकी भूमि को मिसाइल हमले से बचाने के लिए विकसित की गई मिसाइल विरोधी राष्ट्र नीति एक ऐसे काल्पलिक दृश्य के लिए अरबों डालर खर्च करने का उदाहरण है, जोकि केवल फिल्मी दृश्य में ही घटित हो सकता है।

११ सितम्बर के सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम को पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया है। इस हमले ने इस धारणा को पूरी तरह तहस–नहस कर दिया है कि तकनीक से हमलों के संबंध में पहले पता लगाया जा सकता है। कुछ तकनीक के आधार पर चलने वाले उच्चकोटि के सिस्टम मानवीय दिमाग के वर्चस्व को छोटा करने का प्रयास करते हैं। मानवीय मन की गतिशीलता और सदैव विकसित हो रही मानवीय दिमाग की फितरत को वह तकनीक काबू नहीं कर सकती, जोकि इसी दिमाग पर आधारित है। इसलिए अमरीका के अपहृत दूसरे विमान को विश्व व्यापार केन्द्र के दूसरे टावर में मारे जाने से रोकने के पक्ष से और समूचे रूप से इस हमले में खुफिया तंत्र की नाकामी वास्तव में तकनीक पर बेपनाह निर्भरता का ही परिणाम है।

कहने का अभिप्राय यह है कि अमरीकी प्रशासन तकनीक को ही सुरक्षा छतरी बना रहा है, न कि लोकतंत्र, मानववाद, समानता पर आधारित एक धर्मनिरपेक्ष प्रबंध को। इस भ्रमज़ाल के कारण देश अक्सर तकनीक को बढ़ा–चढ़ा कर पेश करते हैं और आतंकवाद का सामना करने के लिए न केवल अपनी राजनीतिक प्रभुसत्त को भी दांव पर लगा रहे हैं, अपितु टकराव समाप्त करने के लिए लोकतंत्र और न्यायपूर्ण ढंगों को भी तिलांजलि दे रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आतंकवादी हमलों को पहले पता लगाना कठिन है, इसलिए ऐसे अपराधियों की पहचान के संबंध में पहले ही निर्णय कर लेना शासकों की राजनीतिक विवशता बन जाता है। परिणाम स्वरूप जो भी लोग सभ्य समाज के दुश्मन माने जाते हैं, वे सभी आतंकवादी कार्रवाइयां करने के लिए ज़िम्मेदार ठहराए जा सकते हैं, चाहे उनके विरुद्ध कोई प्रमाण न हों।

धर्म, उत्पन्न होने वाले स्थान या भौतिक रूप के आधार पर आतंकवादियों की पहचान करने का परिणाम प्रभावित हुए समूह के तीक्षण प्रतिक्रम के रूप में निकलता है। केवल तर्क या पक्षपात हावी हो जाते हैं। काफी लोग सारा दोष अरबों, मुसलमानों और दक्षिण एशियाई लोगों पर लगा रहे हैं। इस स्थिति में अमरीका ने अपना बदला लेने के लिए लक्ष्य निर्धारित कर लिए। आतंकवाद का मुकाबला करने के लिए अमरीका का प्रयास अफगानिस्तान, इराक, ईरान और इस्लामी जगत के उनके सहभागियों से बदला लेने का है। किसी एक बुश या बुशों द्वारा अकेले बिन लादेन या कई बिन लादेनों का सफाया हिंसक संस्कृति को समाप्त नहीं कर पाएगा। इस घटनाक्रम से कई सबक सीखने चाहिएं। यदि आतंकवाद को शरण देकर भी इसके विरुद्ध लड़ा जाए, तो यह बढ़ेगा ही। कहने का अभिप्राय यह है कि यहि सब कुछ इस समय हो रहा है।

दूसरा पहलू यह है कि व्यक्तिगत आतंकवाद के मुकाबले संस्थागत हिंसा को उत्पन्न करके इसे शांति के लिए की जा रही जंग के रूप में पेश किया जा रहा है। इस तरह करना हिंसा को स्थापित करना है। तीसरा पहलू यह है कि यह वह अवसर है जब सभ्य समाज विश्व के लोगों की जान की कीमत और रक्षा के संबंध में सोचे, न कि केवल अमरीकी तथा यूरोपीय लोगों की जानों की ही चिंता करे। चौथा पहलू यह है कि शक्तिशाली देश आतंकवाद के संबंध में उनके द्वारा बनाए गए संकल्प पर आधारित ही 'आम राजनीतिक सहमति' थोपने के स्थान पर आतंकवाद के विरुद्ध जनमत जुटाएं। यह सबक यद्यपि स्पष्ट है, परन्तु इन्हें लागू करना या अपनाना कठिन है। आवश्यकता यह है कि प्रभुसत्ता के हित पूर्ण संकल्प के स्थान पर राजनीति का वैकल्पिक संकल्प खड़ा किया जाए, वरना हिंसा को और अधिक संस्थागत बल मिल जाएगा तथा अमन शांति केवल एक मृगतृष्णा ही बन कर रह जाएगी।

अनुवादः बलजीत बल्ली

नोटः डा. प्रमोद कुमार चण्डीगढ़ की अनुसंधान अध्ययन संस्था इंस्टीच्यूट फार डिवैल्पमैंट एंड कम्युनिकेशन चण्डीगढ़ के निदेशक हैं।